IJARSCT

International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology

International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal

ISSN: 2581-9429

Volume 5, Issue 5, November 2025

Impact Factor: 7.67

jkepfjrekul e i dfr d egRo dk o.ku

Mk- lj'k i lkn nkxh ,o Mk- fo'o'oj jfonkl

हिन्दी विभाग

जुबिली कॉलेज, भुरकुंडा, रामगढ़, झारखण्ड

spd99341@gmail.com

bishweshwar78@gmail.com

lkjk'k

मानव सभ्यता के विकास के प्रारंभिक काल से आज तक जितने भी लोकनायक हुए, राम इन सभी में महानायक हैं। लोकदृष्टा तुलसीदास का मानना है कि सभी प्राणियों में साक्षात् राम आत्मवत् हैं। वही जीवन के केन्द्र में है, सारा संसार उनकी रचनात्मक चेतना का प्रतिबिम्ब है। इसीलिए तुलसी ने लिखा है–

सिया राम मय सब जानी। करौं प्रणाम जोरि जुग पानी।।

अयोध्या नगरी से प्रारंभ हुई युवराज राम की जनचेतना की सांस्कृतिक यात्रा में प्रकृति का भरपूर योगदान रहा है। यह लोक जागरण यात्रा कई नदियों के किनारे विभिन्न भाषा–भाषी अनेक जातियों को जोड़ती हुई, अनेक पर्वतमालाओं और गंगा–यमुना के मैदानों से गुजरती हुई दण्डकारण्य, पंचवटी, किष्किन्धा और रामेश्वरम् होती हुई श्रीलंका पहुँचती है। मानो इसमें लोक जीवन, लोक संस्कृति और प्रकृति के उपहारों की त्रिवेणी समाहित है। संस्कृति की इस यात्रा में राजसत्ता पर लोकजीवन का प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। यहाँ प्रकृति के साथ पारिवारिक रिश्तों का लंबा सिलसिला चलता है। वनवास काल में पेड़, पहाड़, नदियां और वन्य प्राणी सभी सीता एवं राम के सहयोगी बनते है। ये सभी उस विराट परिवार के सदस्य है, जिसके मुखिया स्वयं राम है। इसलिए यहाँ राम एवं सीता का सख्य भाव केवल शबरी, गिद्ध, जटायु अथवा वानरों तक ही सीमित नहीं है; वह तो सरयू, गंगा और गोदावरी जैसी नदियों, जलाशयों और वृक्षों से लेकर व्यापक वन–सौन्दर्य तक फैला हुआ है।

jkek;.k dky e i;koj.k

पर्यावरण दो शब्दों का संयोजन है–'परि' तथा 'आवरण'। 'परि' का आशय चारों ओर तथा 'आवरण' का ढकना या आच्छादन करना है। आकाश, वायु, जल, अग्नि एवं पृथ्वी–इन पाँचों तत्वों की विशुद्धि और पवित्रता से संपूर्ण परिवेश परिशुद्ध हो जाता है और इनमें विकार आ जाने से वातावरण दूषित हो जाता है। हमारी प्राचीन संस्कृति 'अरण्य–संस्कृति' या 'तपोवन–संस्कृति' के नाम से जानी जाती रही है, पर आज के विकासवाद से उसका रूप प्रायः अस्तित्वविहीन–सा हो रहा है। जिस प्रकार शरीर में वात–पित्त–कफ का असंतुलन हमें रुग्ण कर देता है, उसी प्रकार भूमि, जल, वायु आदि में असंतुलन होने पर प्रत्येक जीव–जंतु, पेड़–पौधे और मानव पर उसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। प्रदूषित पर्यावरण अनेक रोगों को जन्म देता है। इसे नियति न समझकर मानव द्वारा प्रसूत विकृति कहना अधिक ठीक होगा। इसके लिए सचेष्ट रहने की आवश्यकता है।

गोस्वामी तुलसीदास का समय भारतीय समाज व्यवस्था का ऐसा आदर्श काल था, जिससे समाज को सदैव नयी चेतना और नयी प्रेरणा मिलती है। इस काल की समृद्ध प्रकृति और सुखी समाज व्यवस्था हजारों वर्षों से जन सामान्य को प्रभावित और आकर्षित करती रही है। इसलिये रामराज्य हमारा सांस्कृतिक लक्ष्य रहा है। रामचरितमानस में भारतीय समाज के गौरवशाली अतीत की मधुर स्मृतियां संजोयी गयी हैं। देश की श्रेष्ठ पर्यावरणीय विरासत के प्रति समाज में जागरूकता पैदा करना भी

IJARSCT
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology
International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal
ISSN: 2581-9429
Volume 5, Issue 5, November 2025
Impact Factor: 7.67

मानसकार का लक्ष्य रहा होगा। मानसकार ने यह बताने का प्रयास किया है कि रामायण कालीन भारत में समाज में पेड़–पौधो, नदी नालों, व जलाशयों के प्रति लोगों में जैव सत्ता का भाव था। यही कारण है कि प्रकृति के अवयवों जैसे–नदी, पर्वत, पेड़–पौधे, जीव–जन्तुओं सभी का व्यापक वर्णन मानस में सर्वत्र मिलता है।

नदियां पर्यावरण का प्रमुख घटक होती हैं। संसार की सभी प्राचीन सभ्यताओं का विकास प्रायः नदियों के तट पर हुआ था। हमारे देश में भी काशी, मथुरा, प्रयाग, गया, उज्जैन और अयोध्या जैसे आध्यात्मिक नगर नदियों के तट पर ही स्थित है। इसी प्रकार पर्वत भी प्रकृति के महत्वपूर्ण अवयव हैं। पर्वतराज हिमालय भारतमाता के मुकुट के रूप में प्राचीन काल से ही प्रतिष्ठित है। हिमालय के अतिरिक्त चित्रकूट पर्वत का चित्रण रामचरित मानस में विस्तृत रूप से आया है। पर्वत पर हरियाली थी एवं वन्य जीव ऋषि मुनियों के स्वाभाविक मित्र के रूप में आश्रमों में निवास करते थे।

गंगा हमारे देश में प्राचीनकाल से पूज्य रही है। गोस्वामीजी लिखते हैं कि गंगा का पवित्र जल थकान को दूर कर पथिक को सुख प्रदान करने वाला हैं।

गंगा सकल मुदमंगल मूला। सब सुख करनि हरनि सब सूला।।

इसीलिए ईश्वर के स्वरूप श्री रामचन्द्र जी स्वयं गंगा को प्रणाम करते हैं तथा अन्य से भी वैसा ही कराते हैं। रामराज्य अनायास ही धरती पर स्थापित नहीं किया जा सकता है, बल्कि इसके लिए प्राकृतिक वातावरण के संरक्षण की संस्कृति भी विकसित की जानी बहुत आवश्यक है, जैसा कि तुलसीदास ने रामचरितमानस में वर्णन किया है कि जब श्रीरामचन्द्र जी की बारात विवाहोपरान्त लौटकर अयोध्या आती है, तो नगर में विविध प्रकार के पौधों का रोपण किया जाता है। इसी प्रकार प्रकृति और पर्यावरण के महत्व को रेखांकित करते हुए अनेक परिदृश्यों का वर्णन मानस में मिलता है।

उतरे राम देवसरि देखी। कीन्ह दंडवत हरषु विसैषी।।
लखन सचिव सिय किए प्रनामा। सबहि सहित सुखु पायउ रामा।।

मानस में गंगा यमुना तथा संगम के चित्रण के अतिरिक्त सरयू नदी का विवरण भी उपलब्ध है। सरयू का निर्मल जल आसपास के वायुमण्डल को भी शुद्ध करता है।

बहइ सुहावन त्रिविध समीरा। भइ सरजू अति निर्मल नीरा।।

इसके अतिरिक्त स्थान स्थान पर सई, गोदावरी, मंदाकिनी आदि नदियों का वर्णन रामचरितमानस में मिलता है। उस समय की सभी नदियां स्वच्छ एवं पवित्र जल से परिपूर्ण थीं। यह सदानीरा नदियां पूरे वर्ष कल कल बहती थीं, जिसके किनारे रहने वाले मनुष्य, पशु–पक्षी सभी आनंदपूर्वक जीवन व्यतीत करते थें।

सरिता सब पुनीत जलु बहहिं। खग मृग मधुप सुखी सब रहहिं।।

'राम चरित मानस' में तुलसीदास ने अनेक स्थानों पर प्रकृति में उपलब्ध औषधीय पौधों और तत्वों, जैविक विविधता तथा पर्यावरणीय समन्वय का बहुत अच्छा वर्णन किया है। प्रतीकात्मक रूप में इन बिन्दुओं की गहराई प्रकृति, पर्यावरण और मानवीय प्रगति की ओर भी संकेत करती है।

प्रकृति, पर्यावरण और मानवीय प्रगति के मध्य अन्तर्सम्बन्ध के प्रति मानवीय दृष्टिकोण सांस्कृतिक विरासत एवं परम्पराओं के आधार पर निर्मित एवं विकसित होता है। इस संदर्भ में भारतीय हिन्दू संस्कृति की भूमिका प्राचीनकाल से ही विश्वस्तरीय मानी गयी है। पर्यावरण का अध्ययन तथा उसका संरक्षण सदा से ही हिन्दू संस्कृति के अभिन्न अंग रहे हैं। बात चाहे वाल्मीकि कृत रामायण की हो अथवा तुलसीकृत राम चरित मानस की, प्रकृति चित्रण, पर्यावरणीय संचेतना तथा संरक्षण आदि का उल्लेख विस्तृत रूप से किया गया है।

IJARSCT
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology
International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal
ISSN: 2581-9429
Volume 5, Issue 5, November 2025
Impact Factor: 7.67

वास्तव में यह कहना उचित होगा कि हिन्दू धर्म एक विशिष्ट पूजा पद्धति या आस्था तक सीमित न होकर एक जीवनशैली है और यही बात भारतीय सर्वोच्च न्यायालय ने भी हिन्दू धर्म की व्याख्या देते हुए कही है। हिन्दू धर्म की इस जीवनशैली में धर्म तथा पर्यावरण को एक दूसरे का सहायक व पूरक माना गया है। इस प्रकार पर्यावरण व प्रकृति के साथ अपने सम्बन्ध को पोषित करना ही धर्म है। हिन्दू धर्म में पृथ्वी को धरती माता के रूप में पूज्य माना गया। इसके अतिरिक्त सूर्य, जल, वायु, वृक्ष, अग्नि आदि सभी को देवी अथवा देवता के रूप में पूजनीय माना गया। इतना ही नहीं, बल्कि विभिन्न प्रकार के देवी–देवताओं के वाहक के रूप में बहुत से पशु–पक्षियों की भी आराधना पद्धति विकसित हुई। नदियों, जल, वायु आदि को दूषित करना अथवा वृक्षों को अनावश्यक रूप से काटना या नष्ट करना पाप माना गया है। इसका कारण यह है कि उस समय के ऋषि–मुनियों को पर्यावरण के इन महत्वपूर्ण घटकों के महत्व का बहुत ज्ञान था। उस समय पर्यावरण प्रदूषण जैसी कोई समस्या नहीं थी। पृथ्वी के अधिकांश भूभाग पर उस काल में वनक्षेत्र था। शिक्षा के केन्द्र आबादी से दूर ऋषि–मुनियों के वनों में स्थित आश्रम हुआ करते थे। ऐसे ही एक आश्रम जो कि ऋषि वशिष्ठ का था, में रहते हुए श्रीरामचन्द्र जी ने अपनी शिक्षा ग्रहण की थी।

वाल्मीकिकृत रामायण से लेकर तुलसीदास रचित रामचरित मानस में प्रकृति चित्रण, पर्यावरण संचेतना, पर्यावरण संरक्षण का विस्तृत उल्लेख किया गया है। वास्तव में हिन्दू धर्म एक विशिष्ट पूजा पद्धति, आस्था तक ही सीमित नहीं है वरन जैसा कि भारतीय सर्वोच्च न्यायालय ने भी हिन्दू धर्म को परिभाषित करते हुए कहा है कि हिन्दूधर्म एक जीवन शैली है। हिन्दू धर्म की इस जीवन शैली में धर्म तथा पर्यावरण में सह–सम्बन्ध माना गया है। जिसके अन्तर्गत पर्यावरण प्रकृति के साथ मानव द्वारा उचित, संवेगात्मक एवं सामन्जस्यपूर्ण सम्बन्ध निभाना ही उसका धर्म है। पृथ्वी को धरती माता के रूप में पूजित माना गया तथा सूर्य, जल, वायु, वृक्ष, अग्नि सभी को देवता मानकर पूजनीय माना गया। केवल यही नहीं, अलग अलग देवी– देवताओं के वाहक के रूप में विभिन्न पशु–पक्षियों की भी आराधना की पद्धति विकसित की गयी।

प्रकृति का सीमित विदोहन ही मानव–जीवन के सुखमय भविष्य का आधार है। प्रकृति द्वारा प्रदत्त वस्तु का उपयोग हमें प्रकृति से अनावश्यक छेड़छाड़ किये बिना करना चाहिए। ऐसी ही सामाजिक संस्कृति को पुनः प्रतिष्ठित करने की आवश्यकता है जिसका वर्णन तुलसीदास जी ने रामचरितमानस में किया है।

पर्यावरण संरक्षण से प्रकृति संरक्षण ही नहीं होता है वरन इसके साथ–साथ मानव जाति की स्वास्थ्य सम्बन्धी अनेक समस्याओं का निदान भी होता है। रामायण तथा रामचरितमानस में 'संजीवनी बूटी' का प्रसंग इस बात का द्योतक है कि प्रकृति में उपलब्ध दुर्लभ बूटी–संजीवनी से मृत प्राय शरीर भी जीवित हो सकता है। आवश्यकता केवल उन औषधीय जड़ी–बूटियों के विषय में ज्ञान की है। भारत में आयुर्वेद चिकित्सा प्रणाली प्राकृतिक जड़ी–बूटियों के औषधीय गुणों पर ही आधारित है, परन्तु पाश्चात्य ऐलोपैथी चिकित्सा प्रणाली के प्रचार प्रसार ने आयुर्वेद आधारित चिकित्सा प्रणाली को न केवल अत्यधिक हानि पहुँचाई वरन् इसको अनुपयोगी सिद्ध करने में भी कोई कोर कसर नहीं रखी है।

प्रतीकात्मक रूप में श्रीरामचन्द्र जी की उपस्थिति प्रकृति को सम्पन्न बनाती है। इस तथ्य को सांकेतिक रूप से तुलसीदास जी अरण्यकांड में कहते है।

'जब ते राम कीन्ह तहँ बासा। सुखी भए मुनि बीती त्रासा।।
संत विटप सरिता गिरि धरनी। पर हित हेतु सबन्ह के करनी।।
गिरि वन नदी ताल छबि छाए। दिन दिन प्रीति अति होहि सुहाय।।

DOI: 10.48175/IJARSCT-30038

गोस्वामी तुलसीदास का रचनाकाल भारतीय समाज व्यवस्था का ऐसा आदर्श काल था, जिससे समाज को सदैव नई चेतना और नई प्रेरणा मिलती है। इस काल की समृद्ध प्रकृति और सुखी समाज व्यवस्था हजारों वर्षो से जन सामान्य को प्रभावित और आकर्षित करती रहती है इसलिए रामराज्य हमारा सांस्कृतिक लक्ष्य रहा है। रामचरितमानस में भारतीय समाज के गौरवशाली अतीत की मधुर स्मृतियाँ संजोई गयी है। देश की श्रेष्ठ पर्यावरणीय विरासत के प्रति समाज में जागरूकता पैदा करना भी मानसकार का लक्ष्य रहा है। तुलसीदास ने यह बताने का प्रयास किया है कि रामायणकालीन भारत में समाज में पेड़–पौधों, नदी–नालों व जलाशयों के प्रति लोगो में जैव सत्ता का भाव था। इसीलिए प्रकृति के अवयवों जैसे नदी, पर्वतों, पेड़–पौधे, जीव–जंतुओं सभी का व्यापक वर्णन मानस में सर्वत्र मिलता है।

नदी पर्यावरण का प्रमुख घटक है। दुनिया की सभी प्राचीन सभ्यताओं का विकास प्रायः नदियों के तट पर हुआ था हमारे देश में कशी, मथुरा, प्रयाग, उज्जैन और अयोध्या जैसे आध्यात्मिक नगर नदियों के तटों पर स्थित हैं।

नदियों की भाँति ही पर्वत भी प्रकृति के महत्वपूर्ण अवयव है। पर्वतराज हिमालय भारतमाता के मुकुट के रूप में प्राचीन काल से ही प्रतिष्ठित है। हिमालय के अतिरिक्त चित्रकूट पर्वत का चित्रण रामचरितमानस में विस्तृत रूप से आया है। पर्वत पर हरियाली थी एवं वन्य जीव ऋषि मुनियों के स्वाभाविक मित्र के रूप में आश्रमों में निवास करते थे। मानस के अरण्य काण्ड में पम्पा सरोवर का वर्णन भी अत्यंत मनोहारी ढंग से किया गया है।

जहँ जहँ मुनिन्ह सुआश्रम कीन्हे। उचित बास हिम भूधर दीन्हें।।
चित्रकूट गिरि करहु निवासू। तहँ तुम्हार सब भांति सुपासू।।
सैलु सुहावन कानन चारू। करि केहरि मृग बिहग बिहारू।।

प्रकृति के साथ छेड़छाड़ करने से अनेक विकृतियां उत्पन्न होती हैं। प्रकृति के सानिध्य में न रहने वाले जीव जंतुओं का अस्तित्व संकटग्रस्त हो जाता है। जब श्रीरामचन्द्र जी की प्रार्थना पर समुद्र ध्यान नहीं देता है, तो वे क्रोधित होकर धनुष बाण उठाते है जिससे समस्त जलचर व्यथित हो उठाते है–

संधानेउ प्रभु बिसिख कराला। उठी उदधि उर अंतर जवाला।।
मकर उरग झष गन अकुलाने। जरत जंतु जलनिधि जब जाने।।

वास्तव में प्रकृति हमें स्वाभाविक रूप से अपने उपहार देती है। कृतज्ञ भाव से बिना छेड़छाड़ किये उन्हें ग्रहण करना चाहिए असीमित स्वार्थ से किया गया शोषण विकृति उत्पन्न करता है, जो अतंतः प्रलयकारी है। प्रकृति की इस प्रवृति को समुद्र के माध्यम से मानस में अभिव्यक्ति मिली है।

सागर निज मरजादा रहही। डारहि रत्नहिं नर लहहीं।।

मानसकार ने दोहे व चौपाइयों के माध्यम से हमें पर्यावरण एवं प्रकृति के विविध आयामों से परिचित कराया है। मानस में इस काल के स्वाभाविक प्रकृति चित्रण ने मनोहारी हरी भरी धरती और वन्य जीवन के प्रति प्रेममूलक सम्बन्धों एवं पर्यावरण के संरक्षण में समाज के अंतिम व्यक्ति तक को भागीदार बनाये जाने का आदर्श समाज के सामने उपस्थित किया है। इस प्रकार प्रकृति के संतुलन में संस्कृति की शाश्वतता का युग संदेश हमारे लिए इस काल की महत्वपूर्ण विरासत है। वर्तमान में शुभ और विशेष अवसरों पर पौधारोपण की परम्परा का निवर्हन वर्तमान के भयावह पर्यावरणीय प्रदूषण के संकट से मुक्ति प्राप्त करने की दिशा में एक सार्थक एवं महत्वपूर्ण कदम हो सकता है जैसा कि भगवान श्रीरामचन्द्र जी के काल में था। यही कारण है कि उस समय प्रकृति के समस्त उपहार समाज को स्वतः प्राप्त थे।

मानसकार तुलसी ने मानस में पृथ्वी से लेकर आकाश तक सृष्टि के पाँचों तत्वों की विस्तृत चर्चा की है। भारतीय मनीषियों की यह मान्यता रही है कि मनुष्य शरीर मिट्टी, अग्नि, जल, वायु, और आकाश इन्हीं पाँच तत्वों से मिलकर बना है। इसका दूसरा आशय यह भी है कि प्रकृति निर्मल और पवित्र रहने पर प्राणीमात्र के लिए फलदायी और सुखदायी होती है।

क्षिति जल पावक गगन समीरा। पंच रचित अति अधम सरीरा।।

इस काल में पर्यावरण इतना संतुलित था कि कृषि, पशुपालन और अन्य कार्यो में कभी कोई बाधा नहीं आती थी। इस समय समाज में धन–धान्य की किसी भी प्रकार की कमी नही थी। एक स्थान पर वर्णन आता है –

बिधु महि पूर मयूखन्हि रबि तप जेतनेहि काज।
मांगत बारिद देहिं जल रामचन्द्र के राज।।

इस दोहे से स्पष्ट है कि उस काल में सर्दी–गर्मी और बरसात का मौसम चक्र अपनी संतुलित गति से चलता था। उस समय न बाढ का संकट होता था और न ही सूखे का संकट होता था। इस प्रकार समाज और प्रकृति के मध्य समन्वयकारी स्थिति रहती थी।

इस पर तुलसी लिखते है–

दैहिक दैहिक भौतिक तापा। राम राज नहीं काहुहि व्यापा।।

इस आधार पर कहा जा सकता है कि समाज के अंतिम व्यक्ति तक को सुख, संतोष और आनंद उपलब्ध था अर्थात् सर्वत्र शांतिपूर्ण मंगलमय वातावरण था। इसके साथ ही राम, लक्ष्मण और सीता जी वन में भी आनदित और प्रशंसित थे। मानस में एक प्रसंग में कहा गया है कि दृ वन में खाने के लिए फल है, सोने के लिए धरती माँ का आँचल है और धूप से बचने के लिए छाया देने वाले वृक्ष है, ऐसे में खड़ाऊ पहनकर चलने की क्या जरुरत है? वहां धरती की हरी–हरी दूबे नंगे पावों को स्वतः ही सुखद लगती थी।

चाहिय कीन्ह भरत पहुनाई। कंद मूल फल आनहु जाई।।

वन्य जीवन से जुड़े अनेक प्रसंगों का मानस में सुंदर वर्णन है। राम जब वनवास में जा रहे थे उस समय का विवरण है कि राम के वनगमन मार्ग में अनेक पर्वत प्रदेश, घने जंगल, रम्य नदियाँ और उनके किनारों पर रमण करते हुए सारस और अन्य पक्षीगण, खिले–खिले कमल दल वाले जलाशय और उनके अपने जलचर है, इतना ही नहीं उनके पास ही झुंड के झुंड हिरण, मदमस्त गैंडे, भैंसे और हाथी सभी मौज में घूम रहे है, इन्हें न तो सुरक्षा की चिंता है और न ही कोई किसी से भयभीत है। इस प्रकार के नैसर्गिक परिदृश्य राम को जगह–जगह दिखाई देते है। वृक्षों एवं वन्य जीवों के प्रति राम एवं सीता का लगाव भी कम नहीं है। पशुओं से वो इस प्रकार का व्यवहार करते है मानो वे उनके परिवार के सदस्य हो। मानस में कहा गया है कि वनवास में सीताजी जंगल में हिरणों को नित्यप्रति हरी घास खिलाती थी।

मानस के रचनाकार तुलसीदास ने रामायण काल में औषधीय गुणों से भरपूर प्राकृतिक जड़ी–बूटियों का विस्तृत रूप से उल्लेख किया है। राम चरित मानस में प्रकृति में उपलब्ध अन्य अनेक औषधीय तत्वों का भी प्रतीकात्मक रूप से बहुत सुन्दर वर्णन किया है। इस संदर्भ में यह दृष्टान्त सर्वाधिक महत्वपूर्ण है जब युद्ध के दौरान लक्ष्मण जी मूर्छित हो जाते हैं तो लंका से वैद्य सुषेन को बुलाया जाता है और वे हिमालय में पायी जाने वाली संजीवनी नाम की बूटी से लक्ष्मण जी का उपचार सम्भव होने के बारे में बताते हैं।

इसी प्रकार अनेक अन्य प्रसंग भी हैं। उनमे से कुछ का प्रतीकात्मक उल्लेख किया गया जो वर्तमान में भी प्रासंगिक हैं, देखा जाए तो इन प्रसंग और संदर्भो की चर्चा आज अधिक आवश्यक हो गई है। प्रकृति प्रेमी राम को आपना आदर्श मानने वाले

समाज की आज की स्थिति क्या है? वन, उपवन और उद्यानों को छोड़ दे तो आजकल तुलसी का पौधा भी घरों से गायब होता जा रहा है। प्रायः बड़े घरों के लान एवं गमलों में कैक्टस ही अधिक दिखते हैं। घर में भीतरी सजावट में भी ज्यादातर लोगों का प्रकृति प्रेम प्लास्टिक के फूल पत्तों के माध्यम से अभिव्यक्त होता है। अधिकांश घरों में कॉंच के गमलों में प्लास्टिक के फूल–पौधे बैठक कक्ष की अलमारी या सेन्टर टेबल की शोभा बढ़ाते पाये जाते हैं। आज हम जितने सभ्य और सुसंस्कृत समाज में जी रहे है, उतने ही प्रकृति से दूर होते जा रहे हैं।

पर्यावरण संरक्षण से केवल प्रकृति का संरक्षण ही नहीं होता है, वरन इसके साथ–साथ मानव जाति के स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याओं का निदान भी होता है। रामायण और रामचरितमानस में संजीवनी बूटी का प्रसंग इस बात का द्योतक है कि प्रकृति में मृतप्रायः शरीर को जीवित करने की क्षमता रखने वाली वनस्पतियां भी इसी प्रकृति में विद्यमान होती हैं, आवश्यकता केवल इस बात की है कि ऐसे औषधीय गुणों वाली वनस्पतियों का उचित ज्ञान प्राप्त, संचित और संरक्षित किया जाये। भारत में आयुर्वेद चिकित्सा प्रणाली प्राकृतिक जड़ी–बूटियों के औषधीय गुणों पर ही आधारित है, परन्तु पाश्चात्य ऐलोपैथी चिकित्सा प्रणाली के प्रचार–प्रसार ने इस आयुर्वेदीय चिकित्सा प्रणाली को न केवल अत्यधिक हानि पहुँचाई वरन इसको अनुपयोगी सिद्ध करने में भी कोई कोर कसर नहीं रखी है।

स्वाधीन भारत में रामराज्य की कल्पना करते हुए गांधी जी ने 'यंग इण्डिया' में लिखा था–''अंग्रेज़ों ने निश्चय ही चिकित्सा व्यवसाय का उपयोग हमें दासता में बाँधे रखने के लिए सफलतापूर्वक किया है। पाश्चात्य चिकित्सा प्रणाली का प्रचार–प्रसार हमारी दासता को बढ़ाने वाला है। यह प्रणाली बहुत खर्चीली है और इसे स्वयं डॉक्टर भी जानते हैं। इस प्रणाली में रोग परीक्षण के लिए रक्त परीक्षण, मल, कफ आदि कितने ही प्रकार के परीक्षण किये जाते हैं जिन पर अत्यधिक धन व्यय होता है। डॉक्टरों की फीस भी बहुत महंगी होती है। इस प्रणाली का विकास यूरोपीय देशों में हुआ है, अतः यह प्रणाली उन्हीं देशों के जलवायु में पली–बढ़ी जनता के रहन–सहन, आहार–विहार को दृष्टि में रखकर विकसित हुई है।

वर्तमान संदर्भ में यदि देखा जाये तो जिस प्रकार मनुष्य ने वैश्विक स्तर पर ज्ञान–विज्ञान के क्षेत्र में उन्नति की है, उसी के अनुपात में न केवल मानव जाति अध्यात्म से दूर होती गयी है बल्कि सृष्टि के भक्तिभाव में भी ह्रास हुआ है। यद्यपि यह भक्तिभाव ही है जो हमें ज्ञान एवं विज्ञान के स्वार्थमय क्षेत्र से निकालकर समस्त मानव जाति के हित में सोचने व कार्य करने की दिशा में प्रेरित करता है जिससे मनुष्य में पर्यावरणीय चेतना का जागरण होता है।

यहां यह स्मरण करना अप्रासंगिक नहीं होगा कि हम प्रकृति से जुड़कर ही प्रकृति पुरुष राम से जुड़ पाएंगे। क्या हमारे प्रकृति उन्मुख क्रियाकलापों की स्थिति और उसका स्तर हमारे लोकजीवन के आदर्श श्रीराम के रिश्ते को परिभाषित करने की कोई कसौटी हो सकती है? तुलसीदास के अनुसार वृक्षारोपण की प्रवृत्ति ही युगधर्म है जिससे हमें प्रदूषण से मुक्ति प्राप्त होती है। रामचरितमानस में पर्यावरणीय चेतना को विस्तार देते हुए तुलसीदास जी ने सामाजिक व्यवस्था और विज्ञान के मध्य समन्वय एवं तादात्मय स्थापित करने का प्रयास किया है। रामचरित मानस के प्रथम अध्याय बालकाण्ड में ही तुलसीदास जी ने शिव–पार्वती विवाह के संदर्भ में पर्यावरणीय चेतना एवं इसके आवश्यक अवयवों को वैज्ञानिक ढंग से प्रतिपादित किया और जैविक विविधता की आवश्यकता की ओर संकेत करते हुए वर्णन किया है कि भगवान शिव साँपों को गले मेंहार की तरह और शरीर पर बाघ की त्वचा को वस्त्र की तरह धारण करते हैं। इस संकेत में यह संदेश छुपा हुआ है कि यदि प्रकृति के जीवों को सुरक्षित नहीं किया गया तो इससे पर्यावरण को होने वाले नुकसान के कारण यह जगत ही भस्म के समान हो जाने की सम्भावना होगी। इसी प्रकार भगवान शिव पर्यावरण का प्रतिनिधित्व करने वाले जल (गंगा), वायु अथवा आकाश (चन्द्रमा), प्रकाश

ISSN: 2581-9429
Volume 5, Issue 5, November 2025
Impact Factor: 7.67

या ऊष्मा (सूर्य) तथा पृथ्वी (साँप) के साथ नन्दी का होना स्पष्ट करते हैं कि प्रकृति के साथ ही गोवंश का संरक्षण सुनिश्चित होना चाहिए।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि रामचरितमानस में तुलसीदास जी ने मानवीय संवेदनाओं, प्रवृत्तियों के अनुरूप सामाजिक वातावरण एवं प्रकृति के समन्वय का विस्तृत चित्रण किया है जिसका गहन विश्लेषण न केवल वर्तमान में भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों की पुनर्प्रतिष्ठा में सहायक होगा बल्कि समस्त मानव जाति के अस्तित्व के दृष्टिकोण से भी अपरिहार्य है।

I UnHk

[1]. डॉ० रामनाथ शर्मा एवं राजेन्द्र कुमार शर्मा, भारतीय समाज, संस्थाएं और संस्कृति, एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली।

[2]. ब्रह्मवर्चस, आयुर्वेद का प्राणः वनौषधि विज्ञान, वेदमाता गायत्री ट्रस्ट, शान्तिकुंज, हरिद्वार, तृतीय संस्करण, 2013.

[3]. विश्वनाथ त्रिपाठी, लोकवादी तुलसीदास, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1974.

[4]. अंजलि श्रीवास्तव, पर्यावरण संरक्षण, नमन प्रकाशन, नई दिल्ली, 2001.

[5]. किरण कुमारी गुप्त, हिन्दी काव्य में प्रकृति चित्रण, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रकाशन, प्रयाग, 1959.

[6]. विद्यानिवास मिश्र, रामायण का काव्यमर्म, प्रभात प्रकाशन, आसफ अली रोड, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2001.

Copyright to IJARSCT
www.ijarsct.co.in
DOI: 10.48175/IJARSCT-30038

ISSN 2581-9429 IJARSCT